International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 144-145

कबीर की दृष्टि में सामाजिक मूल्य

अजमेर

गांव व डाक. बुटाना कुण्डू, तह. गोहाना जिला सोनीपत, हरियाणा, भारत

प्रस्तावना

कबीर मात्र भक्ति–काल के सहज तथा जमीनी भक्त कवि ही नहीं थे, वरन एक बड़े समाज सुधारक भी थे। उन्होंने जाति पाति का विरोध कर एक समरस आडम्बरहीन सर्वतोभावेन सुखी और समुन्नत मानव समाज का आदर्श दिया। कबीरदास जी हिन्दी साहित्य के एक कवि है जिन्होंने सामाजिक मूल्यों की प्राण प्रतिष्ठा की। कबीर ने पुराण प्रतिपादित ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था, जो कि सम्भव है अपने उत्सकाल में योग्यता और कर्म पर आधारित वर्ग विभाजन रहा हो, परवर्ती कालों में घोर आडम्बर युक्त, वंश परम्परा पर आधारित विकृत जाति प्रथा का रूप धारण कर चुकी थी, का डटकर विरोध किया और एक ऐसे पाखण्ड तथा आडम्बरहीन समाज की स्थापना पर जोर दिया जिसमें सर्वजन बिना आत्महीनता का शिकार हुए अपनी और सामाजिक उन्नति कर सके। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अपने जीवन का अस्तित्व बनाए रखने के लिए उसे संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष मानव व प्रकृति दोनों से है। इसी संघर्षमयी जीवन से अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं। इन्हीं अनुभूतियों की लिपिबद्ध अभिव्यक्ति ही साहित्य है और पुनर्रचना भी। साहित्यकार समाज का सदस्य है। यह समाज में रहकर अनुकूल–प्रतिकूल अनुभव प्राप्त कर साहित्य की रचना करता है। सामाजिक समस्याओं के प्रति साहित्यकार का जो प्रयत्न और पुरुषार्थ है वही सामाजिक चेतना की परिणति है। प्रत्येक मानवीय समस्या पर सामूहिक दृष्टि से विचार करना ही विकसित रूप में भी तभी चरितार्थ समझी जा सकती है। जब वह स्वचेतना से हटकर समाज की भलाई के लिए कार्य करता है। व्यक्ति जितने अंशों में सामाजिक चेतना को ग्रहण करता है, उतना ही उसका जीवन समाज सापेक्ष होता है। भारतीय सामाजिक जीवन की गौरवपूर्ण परम्परा को मध्यकाल के संतों ने नूतन नीति और नैतिकता प्रदात्त की, जिसमें कबीर की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।। उनका पूरा जीवन ही समाज की उन्नति व मार्गदर्शन में व्यतीत हुआ। व्यक्तिवादी चेतना के स्थान पर समष्टिवादी चेतना को प्रधानता दी और समाज के अंधविश्वासों, अत्याचारों, बाह्यआडम्बरों से संघर्ष किया। वे साम्प्रदायिकता, बाह्य आडम्बरों और अंधविश्वास पर गहरी चोट कर समाज को पुनर्गठित करने का विश्वास किया। उन्होंने अपने सद्प्रत्यनों से जीवन और समाज को एक नई गति दिशा प्रदान की।''[1]

जिस समय महात्मा कबीर का आविर्भाव हुआ था। उस समय समाज में विनाश और निराशा का तांडव हो रहा था। देश में सर्वत्र दुख कलान्वित और अशांति ही दिखलाई दे रही थी हिन्दू और मुसलमान इन दोनों समाजों की धार्मिक एवं व्यावहारिक सभी बातों में आडम्बर बढ़ता जा रहा था। हिन्दू मुसलमान, बादशाहों की स्वेच्छाचारिता, अत्याचार तथा क्रूरता आदि दानवी वृत्तियों ने हिंदू जाति को और भी हीन बना दिया था। धर्मान्ध मुसलमान बादशाहो द्वारा अपने सामने अपने ही उपास्य देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़ जाता देख कर उनका ईश्वरीय विश्वास भी शिथिल हो चला था। इस प्रकार सम्पूर्ण समाज अपनी द्वेष घृणा और पापाचार से लिप्त था। समाज की इस दुर्दशा भावना की अभिव्यक्ति मिलती है। डॉ. शुकदेव सिंह के विचार यहाँ दृष्टव्य है वे लिखते हैं कि ''मनुष्य के दमन और अपमान के खिलाफ 'कबीर' विरोध और सच्चाई का प्रतीक है। हर तीखा और तेज आदमी कबीर के आइने में अपना चेहरा देखना चाहता है।''[2]

कवि या साहित्यकार का व्यक्तित्व अपने युग से इतना जुड़ा रहता है कि वह चाहे या न चाहे युगीन प्रवृत्तियाँ किसी–न–किसी रूप में उसकी रचना में स्वतः विद्यमान रहती है। समाज निरपेक्ष किसी साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। कबीर का उस युग के सबसे बड़े साम्यवादी नेता थे, उनकी समाज उनके युग की ही विषमताओं की प्रतिक्रियाओं का परिणाम था। डॉ. प्रकाश चंद गुप्त के अनुसार ''सामाजिक शोषण अनाचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में आज भी कबीर का काव्य एक तीखा शस्त्र है। कबीर ऐसे द्वीप खम्भी है, जिन्होंने भ्रमित और दलित समाज का मार्गदर्शन किया। वे सच्चे समाज हितैषी थे। वे न तो इस्लाम से प्रभावित थे न ही उनका सम्बन्ध असत्य से था। उनका सम्बन्ध मनुष्य के द्वारा मनुष्य के राक्षसी उत्पीड़न एवं घृणित उपेक्षा से था। कबीर की भाव भूमि मानव के सामाजिक धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित है। कबीर समाज के सूक्ष्म पर्याय लोचक थे। उनके लिए समाज और धर्म मानव जीवन के दो अभिन्न अंग है। धर्म का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज की धारणा करने वाले तत्त्व धर्म का ह्रास होने लगा तो समाज भी दूषित होने लगा है। उस युग में समाज के पतन की परकाष्ठा की जहाँ मानवता के टुकड़े–टुकड़े हो रहे थे। वहीं हिंदू और मुसलमानों में धर्म के कारण द्वेष बढ़ता जा रहा था। मानवता को रौंध कर तथाकथित धर्म के ठेकेदार अपनी श्रेष्ठता बढ़ाने में तुले हुए थे। कबीर ने इन सबका दृढ़ता से विरोध किया और बताया कि सभी एक ही परमात्मा के अंश है। सामाजिक मूल्यों की स्थापना की। समाज से विद्वेष की भावना को दूर करते हुए दोनों धर्मों में एकता लाने का प्रयत्न किया।

एक जाति के सब जग उपजा
क्या ब्राह्मण क्या सूद।''[4]

कबीर ने बाह्य आडम्बरों का विरोध किया। उनको धर्म, जप, ज्ञान, ध्यान, पूजा सब व्यर्थ लगते थे। इसीलिए कबीर ने इन सबका विरोध किया। धर्म के इस विकृत रूप ने कबीर को बहुत प्रभावित कियि फलस्वरूप उनकी वाणी धार्मिक विकृत्तियों की धज्जियाँ उड़ाने को तत्पर रहती थी। उन्होंने निराश और हताश जनता के मन में दृढ़ संकल्प शक्ति का संचार किया। उन्होंने जनता को बताया तीर्थ व्रत पूजा पाठ आदि बाह्यचारों का कोई महत्त्व नहीं है। काशी के पीछे भटकने की जरूरत नहीं है, मुक्ति तो घर बैठे ही मिल सकती है।

मैं को कहाँ ढूंढे बन्दे मैं तेरे पास
ना मैं देवल ना मैं मसजिद न काबे ना
खोजी होय तो तुरन्त मिलि है पल भर की तलाश में।''

हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता के खिलाफ आवाज उठाने वाले पहले संत विचारक और कवि कबीर ही है। रूढ़ धार्मिक शास्त्रों पूजा

उपासना सम्बन्धी जड़ताओं मंदिर मस्जिद अंध आस्थाओं जाति वर्ण सम्बन्धी फर्कों को अस्वीकार कर दिया। वे केवल विरोध ही नहीं कर रहे थे, बल्कि एक कर्ममय समाज की रचना कर रहे थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही पथभ्रष्ट हो चुके थे। वे कहते हैं–

अरे इन दो उन राह न पायी
हिन्दू आपन करे बड़ाई गागर छूवन न देई
हिन्टूसन की हिन्दूवाई देखी तुरकन की तुरकाई।''[5]

''कबीर का युग व्यक्तिवादी युग था। अपनी–अपनी डफली अपना–अपना राग वाली कहावत प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण रूप से चरितार्थ हो रही थी, जिसका मन जिसमें लगा हुआ था, वह उसी को अच्छा मानता था। कोई किसी की बात को सुनने को तैयार नहीं था। कबीर समाज को सही रास्ते पर लाने के लिए पूर्व निश्चित किसी भी मान्यता को मानने के लिए तैयार नहीं थे। यही कारण है कि उन्होंने न तो इस्लाम को अपनाया न ही हिन्दू धर्म को। वे दोनों को छोड़कर बीच का रास्ता निकालने में लग गये।''[6] कबीर कालीन समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय थी, सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था जातिगत अत्याचार ऊँच–नीच की भावना पर आधारित थी। कबीर यह देखकर अत्यंत क्षुब्ध थे। धर्म के नाम पर पूरा समाज पाखण्ड और बाह्यचारों से ग्रसित था। पंडित को पुराण पर अहंकार था। तपस्वी तप के अहंकार में डूबे थे। मुल्ला को कुरान पढ़ने पढ़ने का शौक था तथा काजी को न्याय करने का शौक था। सभी मोहग्रस्त थे। सन्मार्ग से भटक गए थे। सामाजिक जीवन की सुख समृद्धि के लिए संत कबीर ने आर्थिक पहलुओं की तरफ भी ध्यान दिया। पर उन्होंने सादगी पर बल देते हुए संचय का विरोध किया–

''साईं इतना दीजिए जामै कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।।''

सभी मनुष्य और देश इस मानवीय दृष्टि को अपना ले तो समस्त आर्थिक वैषम्यों का अंत हो सकता है। धन लोलूपता के कारण चारों तरफ लूटपाट और हत्याएँ होती हैं। कबीर की वाणी ने समाज में एक बड़ा कार्य किया। वह है सात्विकता और आचरण प्रणवता का। कबीर अपने युग के चेतनशील प्राणी थे। उनकी वाणी में युग की प्रवृत्तियों की प्रतिध्वनि और समस्याएँ मुखरित हुई हैं। उनका साहित्य उनकी सामाजिक चेतना, क्रान्तिकारी और अद्‌भुत सम्वन्यकारी रूप को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार सारे विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि कबीर सामाजिक जीवन को सहज जीने योग्य बनाना चाहते थे। उनकी सम्पूर्ण सामाजिक चेतना का आधार भूत तत्त्व और तथ्य मानवीय मूल्यों को संस्मरण प्रदान करना है। इसी का वे आजीवन प्रतिपादन करते रहे। उनका एकमात्र लक्ष्य मानव का कल्याण करना था।''[7] जो उनके सम्पूर्ण साहित्य में देखने को मिलता है। मानवीय मूल्यों का ऐसा चित्रण शायद ही किसी अन्य हिन्दी साहित्यकार की रचनाओं में देखने को मिलता है।

संदर्भ

1. श्री शरण अवस्थी, कबीर व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 67।
2. शुकदेव बिहारी, कबीर दास, पृ. 112।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, (उपसंहार)।
4. डॉ. गुरुदेव सिंह, कबीर साहब, पृ. 343।
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, उपसंहार।
6. श्री शरण, कबीर व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 69।
7. डॉ. कृ. ज्ञा. भिगारकर, संत साहित्य के क्षितिज कबीर ज्ञानेश्वर, पृ. 19।